बुधना वाया बुद्धिदेव

हिन्दी ADDA

नीलम शंकर

बुधना वाया बुद्धिदेव

ट्रेन की रफ्तार और उसके मन की रफ्तार बीच-बीच में एक हो जाती थी। जैसे ही दोनों में से किसी की भी रफ्तार आगे-पीछे होती तड़ से उसकी उँगली मोबाइल के बटन पर

जा दबती, दूसरा गाना सुनने के लिए। वह कानों में लीड लगाए, जिसका दूसरा सिरा उसके पतले से गुलाबी सफेद मोबाइल में खुँसा हुआ था।

पहले वह दिल्ली से कानपुर तक किसी ट्रेन से आया था, रात में। रात में भी थी गाड़ियाँ लेकिन उसने सुबह-सुबह ही पंजाब मेल चुनी अपने गाँव के लिए। उसी में बैठा कभी सपने बुनता-गुनता। कभी वर्षों पीछे जाकर गाँव की बदनुमा जिंदगी से मुँह कसैला कर लेता। पंजाब मेल के जनरल बोगी में भीड़ के क्या कहने। लोगों से खचाखच भरी हुई थी। जितने लोग सीट पर बैठे थे, खड़े उससे कम नहीं थे। वह खिड़की के पास सिंगिल सीट पर बैठा, गानो को सुनता हुआ तेजी से गुजरते हुए पेड़ों, खेतों, गढ़हीनुमा तालाबों व बिजली के बड़े-बड़े टावर नुमा खंभों को निहारता सोचता बैठा हुआ था। बीच-बीच में एक निगाह डिब्बे के मुसाफिरों पर भी डाल लेता। जो जरा-सी भी टेक लगाने को बेताब दिख रहे, लोगों की निगाहें टोह रही लगातार शायद कोई रहम ही कर दें। क्या कीजिएगा जनरल डिब्बों का मंजर होता ही कुछ ऐसा है। बगल में बड़ी देर से खड़े एक मुसाफिर पर उसने निगाह डाली। पता नहीं क्या सोचा और खुद खड़ा हो गया उसे बैठाल दिया।

कद काठी, वेष भूषा उसने किसी फिल्मी टपोरी टाइप विलेन की बना रखी थी। कलाई से लेकर मछलियों तक उसने किस्म-किस्म का गोदना गोदवा रखा था। आज की भाषा में कहें तो टैटू बनवा रखा था। जो उसके स्लीवलेस गोल गलानुमा काली टी शर्ट से अपने आप दिखाई दे रहा था। गले में स्टील की दो या तीन मोटी-मोटी चैन उनमें बड़ा-सा लटकता लाकेट। कलाइयों में मोटे-मोटे किसी पीली धातु के कड़े। लेकिन किसी भी कलाई में घड़ी नहीं थी। मरे मोबाइल ने पारंपरिक घड़ी का बाजार ढीला कर दिया हैं। बीच-बीच में मोबाइल से ही समय देखता और फुसफुसाहट के अंदाज में अभी इतना देर है अपने घर पहुँचने में। समय को वह कभी स्पष्ट नहीं बोलता था।

उमस भरी गर्मी में सभी बेहाल, डिब्बे में भीड़ की स्थिति यह, किनारे की तरफ जो ऊपर केवल सामान रखने की पतली पट्टीदार सीट मुश्किल से एक फुट की भी नहीं होती और आकार में बड़े क्या नवजात शिशु को भी नहीं बैठाला जा सकता। गोलाई लिए होती है सीट डिब्बे की छत से ज्यादा से ज्यादा सवा फुट होगी। लेकिन उसमें भी

पतली कद काठी के लोग किसी तरह लेटे हुए थे। उसी में किसी की पानी की बोतल का ढक्कन पानी पीने के बाद शायद ठीक से बंद नहीं कर पाया होगा।

पानी उस टपोरीनुमा लड़के की गर्दन से होता हुआ उसकी काली स्लीवलेस टी शर्ट में घुस गया। ऐसा लगा कि वह अब अपनी बाडी-शाडी का प्रदर्शन करते हुए रोब दिखाएगा पर वैसा कुछ भी नहीं हुआ। खड़ा हुआ टी शर्ट उतारी हलके से झटका फिर पहन लिया। उतनी ही देर में दिखाई पड़ गया कि उसकी बे-बाल की चौड़ी छाती में ढेरों टैटू गुदे हुए थे पीठ और कमर पर। अजीब जूनून था उसे इतने परमानेंट टैटू बनवाने का। कोई फूल-पत्ती नहीं किस्म-किस्म के कीड़ों के औए तिकोने दिल को भेदता तीर, और नहीं तो डरावने-डरावने से आकार वाले चित्र।

एक सहयात्री ने टोक ही दिया, 'यार इतने गोदना! पिरान नाही का तोहे।'

'उधर का इतना दरद था इधर का दरद तो कुछ भी नहीं लगा' कुछ-कुछ लापरवाही भरा जवाब था उसका। वह क्यों दिखाए अपनी संजीदगी किसी भी अजनबी के आगे। उधर का दरद में वह दोनों जगह का कम से कम शब्दों में बयान कर गया था।

गाँवों में भूमिहीन वह भी अवर्ण किसानों के दुख-दरद अनगिनत होते हैं। वह किस-किस का बयान करें और किससे कहें। और क्यों कहें? कोई निदान करे तब ना कहे। या फिर अपनी हँसी उड़वाए वह बुद्धू, बुधना से बुद्धिदेव हो गया था। कारण वही पुराना कि वह बुधवार को पैदा हुआ था। वह पाँच वर्ष बाद अपने गाँव लौट रहा था। उसका गाँव निछान ठाकुरों का गाँव। बाकी किस्म-किस्म के अवर्णों की टोलियाँ। ज्यादातर की दक्खिन दिशा में ही बसावट थी। कुछ अपने मालिकों की दया किरपा से या यूँ कहिए वह अपनी जरूरत अनुसार एक दो कोठरी की जगह दूसरी दिशाओं में दे दिए ताकि टैम-कुटैम उनको गोहरा सकें।

फिलवक्त उसका एक ही लक्ष्य अपनी माँ को ठाकुर - ठाकुरदीन से मुक्त करवा के अपने साथ दिल्ली ले जाना। ऐसा नहीं था कि ठाकुर साब ने उसकी माँ को कैद कर रखा हो या रखैल जैसा कुछ हो। लेकिन उसकी माँ से वह वैसा काम करवाते जो उसे हरगिज नहीं पसंद था। बात काम की नहीं थी थी उनकी नीयत की थी। बात उस

समय की हैं जब उसके पिता बचना को परीक्षण में फोते में कैसर निकला था। डाक्टर ने साफ कहा था कोई पुरानी चोट है जो धीरे-धीरे कैंसर में बदल गई। गाँवो में तो जिसका खेत जोते बोवे वही उसका मालिक। वह गये 'बाबू साब हमका दवाई बरे ढेर पैसा चाही।' 'काय्य्बे कौन बेमारी डाक्टर बताइस की ढेर पैसा लगी।'

बचना ने डाक्टर का परचा ठाकुरदीन के आगे खिसका दिया था। अंग्रेजी लिखावट वाले पर्चे में वह देखकर क्या समझे कितना समझे यह तो ठाकुरदीन ही जाने। पर नामी डाक्टर का नाम पढ़ कर जो समझे वह 'काय्य् बे ओतना महँगा डाक्टर के लगे जायके कवन जरूरत रही?' एक फटकार और धिक्कार दोनों थी उसमें। 'बाबू जवन बीमारी भय बा ओकर एलाज वोंहीं होई।' बात उसने जितनी सहजता से कही पर अंदर से वह उतना सहज था, नहीं। डाक्टर ने तो स्पष्ट ठेठ हिंदी में उसे समझा दिया था।

'कितना चाहिए आखिर? कभी-कभी ठाकुरदीन पता नहीं रोब के लिए या दिखने के लिए दिहाती से खडी हिंदी बोलने लगते। पुर्वांचल में जमींदारी लगभग खतम हो गई परंतु सभ्यता को अभी भी कुछ मजबूत किसान बचाए हुए हैं जैसे ठाकुरदीन। हिसाब-किताब नफा-नुक्सान का गणित लगाया, चार दिन तक। फिर उसे पैसा के लिए हामी भर दिए।

उन चार दिनों में बचना बचना-बो के मन में ऊब-चूभ लगी रही। बड़कऊ और दादा अलग हैरान पर कोई किसी से अपनी परेशानी नहीं बाँट रहा। क्या कहें और करें एक दूसरे से। लाचार चारों लोग। आसरा ठाकुर - ठाकुरदीन। इस समय वही उनके भगवान। तारणहार। आखिर उन्होंने उसके छै कूला खेत के बदले पैसा दे दिया था। उसकी मजबूरी ने उसे भूमिहीन कर दिया था। जो उनकी ताकत में था उन्होंने वही किया। जितना पैसा, वैसा इलाज, और उतने ही दिन की जिंदगी बचना को नसीब हुई। बच रही बुधना की माँ, बुधना, एक ठो दादा (बड़का बाबू) और बुधना का बड़ा भाई बड़कऊ। यह सारे लोग ठाकुरदीन के यहाँ किसी ना किसी काम में लगे हुए थे। बस खाना-खर्चा किसी तरह चल रहा। बुधना की माँ रोज नियम से ठाकुरदीन, बहू के बुकुआ पीसी सरसों का उबटन लगाती। उनको हैंड पंप के नीचे बैठाल कर लगातार चलते हुए नहलाती। जब तक की उनको ठंडक का एहसास ना होने लगे। उनका ही साज-श्रृंगार सेवा-टहल में लगी रहती। जो कुछ वक्त बचता उसमें अपने घर का काम

करती थी। बुधना तब किशोरावस्था को पहुँच रहा था। वह भी उन्हीं के यहाँ बेगारी पर था। भोर होने से लेकर सैय्या पर जाने तक। बुधना की माँ कद-काठी से ठीक-ठाक साधारण नयन नक्श। एक खासियत कि वह बड़े सलीके से और साफ सुथरी रहती थी। उबटन लगाने, ठकुराइन को नहलाने, सँवारने के बाद तुरंत जाती, रेह से अपना लूगा-लत्ता रोज साफ करती थी।

कुछ मर्द केवल घर के बाहर की ही कमान सँभाल रखते हैं। घर के अंदर का मलिकाना मेहरारू के हाथ में होता है। परंतु ठाकुरदीन कुछ-कुछ मेहरा टाइप के बाहर-भीतर हर जगह दखल दिए रहते। ऐसों की मेहरिया चाह कर के भी पति की बेजा भावनाओं-इच्छाओं का विरोध नहीं कर पाती। मेहरारू ठाकुरदीन साहस तो दिखाती पर ठाकुरदीन की पैंतरेबाजी के आगे ज्यादा देर टिक नहीं पाती थी। ऐसी लाचार विधवा स्त्री पर मालिक की निगाह न पड़ती हो, यह कैसे संभव हो सकता था। लेकिन ठकुराइन ही उसे अपने आप में इतना लपेटे रहती कि ठाकुरदीन अपने लिए दिमाग दौड़ाते लेकिन स्पेस नहीं पा रहे थे। वह लक्ष्य के लिए दिमागी मशक्कत करते रहे आखिर कैसे न मिलता।

उनके भी देह में आए दिन पिरान की शिकायत रहने लगी। आए दिन ठकुराइन से लड़ियाते हुए दर्ज भी कराते। खिसिया के एक दिन ठकुराइन ने कह ही दिया, 'तुहू लगवावा करा बुकुआ तेल हमरे हिसकन' बिना हील-हुज्जत के झोली में हीरे-मोती आ गिरे।

औरत मरद की निगाह ना पहचाने यह हो भी कैसे सकता है। समझ तो वह बहुत दिनों से रही थी। कसमसाते, हल्की नाराजगी दिखाते हुए, अपने बिगड़े समय को पहचानते हुए, दबे मन से हामीं भरी। भरी क्या उससे भरवाई गई थी।

'जब तू हमरे लगावत हउ तो उनहू के तो चाही की लगा दा। मरद हएन मजबूत रहिहीं तो तोहरेन सबके बरे न करीहिंगा'। मन ही मन बुदबुदाई बुधना की माँ 'करिहैं कि हमार सरबस छीन लिहेन, अब जवन कुछ बचा अहै उहो के फिराक मा हएन पढ़ाई नाहीं बा हमरे लगे का समझदरियो घुसुर गै बा'।

बुधना की माँ रच-रच के सरसों पीसती। ठकुराइन की शरम हया को प्यार से 'काय्य्य मल्किन हमरे से का लजावत हऊ जऊन तोहरे तवन हमरे'। शरीर के हर अंग में बुकुआ लगाती। गोरी, चिट्टी, मांसल देह, रपटीली चमड़ी की ठकुराइन। बुधना की माँ को एक अलग किस्म का आनंद धीरे-धीरे आने लगा था। आखिर वो भी एक औरत थी उसके पास भी जज्बात और उसकी जरूरतें थीं। जब वह उनके अति संवेदनशील अंगों पर धीरे-धीरे प्यार से लगाती-मीसती, उसे और उन्हें भी न अखरता न अचरज होता। घनिष्टता का पैमाना यहाँ तक पहुँच गया कि कभी-कभी आपस में एक दूसरे के अंगो से खेल-खिलवाड़ भी कर लेती। उस घड़ी मालकिन-मजूरनी का भेद मिट जाता था। कोठरी के बाहर मालकिन अपने ढब में आ जाती। लेकिन मया का एक कोना उनके हिरदय में जगह पा चुका था। हर दिन अगले दिन का इंतजार रहता था दोनों जनी को। एक तरह से आपसी ठिठोली-संतुष्टि वाला बहनापा कोठरी के अंदर अपनी जगह बना चुका था।

अमूमन पति पत्नी के रिश्तों में एक कठोर होता हैं तो एक कोमल-निर्मल। शायद यह प्रक्रिया स्वतः बन जाती है। ठाकुरदीन की पत्नी भक्ति परायण अति मानवीय और सरल ह्रदय वाली। बुधना की माँ की हर परेशानी की राजदार-रहमदार। वह भी ठकुराइन के प्रति उतनी ही समर्पित।

अगले दिन से ठाकुरदीन के भी बुकुआ लगना शुरू हो गया था। वह एक शहराती कट चड्ढी पहने नंगे बदन लगवाते। नंग-धड़ंग, हट्टा-कट्टा, अधनंगा शरीर। भूखी आँखें, अघाई आँखों, प्रेमिल आँखों में फर्क होता है जो आसानी से पहचानी जा सकती हैं। बुधना की माँ ने महसूस किया था ठाकुरदीन की आँखें भयभीत कर देने वाली थी। हर दो मिनट में अपना पल्लू ठीक करती उँगली के सहारे। अपने डर को वह इसी तरीके से कम कर रही थी। उसे शुरुआती दिनों में एक स्वाभाविक-सा डर शील-शरम, संकोच होता। वह भी जल्दी से निबटाने के चक्कर में रहती। ठकुराइन से बचा-खुचा बुकुआ ही बस चटनी के माफिक लगाती। ताकि देर तक शरीर पर रगड़ना न पड़े। हल्का-सा कड़ू तेल तन में चटा के मात्र पंद्रह मिनट में फारिग हो लेती। ठाकुरदीन बेहयाई से टोंकता क्या, भद्दी जबान के साथ...

'ई का$$$ रे हम जमत नही बाटी का... निबटाबे के फेर में रहे ले... मालकिन का तो तू दु-दु, तीन-तीन घंटा घिसत हऊ, हा-हा, ही-ही ठठ्ठा चलत रहत हय कोठरी मा। बुधना की माँ स्तब्ध और सन्नाटे में आ गई। फिर पैतरा बदल... 'तोर घरवा अनाजे से भर देब तनी एहर देख ...' वह कहाँ ठाकुरदीन के डायलागों पर कान देती थी। उसकी लापरवाह निगाहों से खिसियाता ठाकुरदीन...

'का रे ई भैंस जइसन शरीर-जाँगर केकरे बरे बचावत हऐ तैं, ऊ नेरबसिया बरे का... हमरेंन से कलियान होई। मालकिन न कुछ कइ पइहैं। फटा पुराना लूगा तक रह जइबू...।

वह चुप तो चुप, एक चुप हजार चुप। ठकुराइन तो अपनी कोठरी में लगवाती थी। लेकिन ठाकुरदीन ने ओसारा चुना था, वहीं तख्त पर लेटते और लगवाते। आते-जाते लोगों को अपनी ठकुरई का अहसास भी करवाते। उनके शरीर का पिरान पता नहीं गया कि नहीं लेकिन बुधना जब भी देखता उसके तन में ऐंठन शुरू हो जाती। वह चीखता...

'माई चल घरे... चल, का खाना न बनावे क ह ...बता न। बनइबे कि न ...न त हम जाई पानी पी के ओलर रही।'

वह हर दिन दो तरह के डर से भर उठती। एक ठाकुरदीन का। दूसरा बेटा का। जो रोज ब रोज धमकिया जाता उसके स्त्रीत्व और ममत्व को। ऐसी जली-कटी बातें सुन कर बुधना की माँ फटाफट समेटना शुरू कर देती। ऐसा ही कुछ-कुछ रोज ब रोज होता था। ठाकुरदीन जैसे ही बुधना को देखते किसी न किसी काम में लपेट देते। पर बुधना इतना नासमझ भी न था। वह जाता तो लेकिन ठाकुरदीन के बहाने से माँ को फटकारता चला जाता। ठाकुरदीन की ठकुराई सर पर आ गई। कई दिन का गुस्सा समेटे-समेटे एक दिन बाहर निकल ही पड़ा। अपने ही घर के अलाने-फलाने को लगा दिया उसके पीछे छै सात ठो झापड़ घूँसा लात रसीद करवा दिया। बिला वजह।

वह जमाना लद गया जब मजूर या मजूरों के बच्चे इसे अपनी नियति मान रो-धो के पुनः 'हो मालिक,' 'जी साहेब' करा करते थे। बुधना कई दिनों तक माथापच्ची करता

रहा अपमान की आग में झुलसता रहा। माई का दो ठो लच्छा चुरा भाग गया दिल्ली। अपनी हाल खबर माँ को देता रहा पीसीओ से ठाकुरदीन के चोंगा वाले फोन पर। गाँव नहीं आया तो नहीं ही आया। बस एक ही धुन कमाऊँगा, शरीर दुरुस्त करूँगा तब जाकर ठाकुरदीन के सामने ताव से खड़ा होऊँगा।

बुधना के भागने को बुधना की माँ क्या आसानी से पचा पाई थी? उसे वह दिन अच्छी तरह याद आ रहा था। जब ठाकुरदीन ने जरा-सी गलती पर अपने कइयों कोरा वाले कुत्तों में से एक कुत्ते को लुहकार दिया था बचना पर। उसने बस एक पंजा ही तो मार दिया था कूदकर। जो दुर्भाग्य से उसके फोते पर लगा था। पतली धोती चीर उठी थी, हल्का-सा नाखून भर लग पाया था। लेकिन धुस्स चोट लग गई थी। एक चीख के साथ वहीं बैठ गया था। वह चोटिल जगह फूली तो फिर कभी पिचकी नहीं। बल्कि आकार में बढ़ता ही गया था। चलता तो लगता अलग से कुछ सामने बँधा हुआ है। बैठता तो लगता सामने छोटी-मोटी गठरी रखी हुई हैं। चाल में असहजता रहती थी। सच पूछो तो वह गलती कोई गलती न थी। उसने उनके किसी रिश्तेदार को पैलगी न कह कर हाथ जोड़ नमस्ते कहा था। बस फिर क्या 'स्स्साले मेहरी के टाँग के सीका के एतनी हिम्मत।' ठाकुरदीन चबाते हुए चीखे थे। पूरी-पूरी परनिर्भरता जो न करवाए, सहवाए और डरवाए।

कई ठो काम करने के बाद उसने वही काम चुना जहाँ से दो पैसा मिले और शरीर भी बने। वह एक जिम में हेल्पर का काम करने लगा। नव धनाढ्यों को देखने समझने में तीन वर्ष गुजार दिए। उनकी किस्म-किस्म की एक्सरसाइज देखता उपकरण देखता उनसे जानकारियाँ लेता। जिम आने वाले जो जरा सरल स्वभाव के होते उसे सही सलाह देते। वह उनकी बिन माँगी मदद करता ठंडा पानी लिए खड़ा रहता, उनको वक्त-वक्त पर पसीना पोछने को टावेल देता आदि-आदि। जिसको जैसी जरूरत वैसी उसकी सेवा करता। बदले में शरीर बनाने की सारी जानकारियाँ इकट्ठा कर रहा होता। थोड़े-मोड़े टिप्स के रूप में कुछ अतिरिक्त कमाई भी हो जाती। जिसे देखो वही बुद्धिदेव-बुद्धिदेव करता वह भी सुबह 5 से लेकर 10 बजे तक फिरिंगी की तरह कभी किसी के पास खड़ा मिलता कभी के पास। कस्टमर खुश तो मालिक दोगुना खुश। उन्हीं किन्हीं खुशी के क्षणों में मालिक ने एक सलाह दे डाली 'तू भी अपना शरीर बना

ले मिलिट्री में सिपाही तो हो ही जाएगा।' बुधना आश्चर्यमिश्रित खुशी के साथ 'सचच्चे मालिक' 'तो क्या झूठ बोल रहा और वह भी तुझसे' उसके दिमाग में एक और सपने ने जन्म ले लिया था। और अपनी मुफीद उम्र का इंतजार करने लगा जब तक उम्र हुई तब तक बुधना जिम मालिक का चहेता बन चुका था। अब काम से बचे वक्त में अपना शरीर बनाने में जुट गया था। शरीर कैसे आकर्षक लगे और दिखे तो, कैसे खतरनाक दिखे वह सब भी उसने कर लिया था। तभी तो शरीर पर किस्म-किस्म के गोदना बनवा लिए थे। उसे हर टैटू में असहनीय दरद होता। लोग कहते हैं कि दिल-दिमाग के दर्द को शरीर का दरद कम करता हैं। जैसे विष-विष को काटता है वैसे ही दर्द भी है। जितनी बार वह गोदना गोदवाता उतनी बार उसके आत्मविश्वास की एक परत चढ़ उठती ठाकुरदीन से सामना करने की।

पक्की सड़क से उतर कच्ची पगडंडी से घर तक ढेरों लोग मिले पर उसे किसी ने भी न पहचाना। न ही उसने किसी को पैलगी ही की। वजह कोई घमंड-गुरूर नहीं, वही कि पहले माँ देखे फिर ठाकुरदीन। मोबाइल और उसका इयर फोन लपेट-लपाट के जींस के पाकेट में डाल लिया था। बाहर ओसारे से ही 'माई-माई रे...।' माँ आवाज कैसे न पहचानती बाहर अचरज से बुधना को देखती रही। फिर लगी लिपट के सिसक-सिसक के रोने। जाहिर था कि वह खुशी के आँसू रहे होंगे। दोपहर से पहले ही पहुँचा था। खमटीयाव का वक्त जा चुका था। पानी गुड़ चबैना ले, वह सीधे ठाकुरदीन के दरवाजे गया। दूर से ही 'मालिक पैलगी।' उस पैलगी में उसके अपने कुछ बन जाने का या कुछ हो जाने का एहसास था। ठाकुरदीन की आँखें डर मिश्रित आश्चर्य से फैल गईं। तब तक वह उसकी वेशभूषा को जाँच परख रहे। काली गोल गले की टाइट फिट टी शर्ट और फेडेड जींस बाकी शरीर पर कड़े, छल्ले, मुनरी, सकरी तो थी ही। सीने का स्पष्ट उभार पेट पिचका हुआ मछलियाँ रह-रह के हिलती-डुलती हुई एक डर का एहसास देती हुई सी। कुछ देर बाद ठाकुरदीन अपनी चेतना अवस्था में लौटे और 'खुश रहा,खुश रहा' मुँह से निकालना ही पड़ा।

'का$$$ रेय्य्य बुधना दील्ली में का करत रहे एतना दिन' उनका सेफलाना साफ दिख रहा था,जिसमें वह मौका-ऐ सिध्हस्त थे।

'हेफ्फर का काम...।'

का **$$$$$$?**

हेफ्फर **...**

उनकी समझ में आया कि नहीं यह तो वही जाने लेकिन बुधना का उच्चारण वही रहा जो उसने अपनी तरह से सीखा था। ठाकुरदीन मन ही मन में सोच रहे, कुछ अच्छा काम पा गया हैं तभी इसकी कमाई इसके शरीर पर दिख रही।

'कय दिन बरे आय हए?' वह क्यूँ बताए और किसलिए बताए।

'माई के लियाय जाऊँगा।'

'आ काहे...' जरा हिचकते-हुए से ठाकुरदीन

'का कौओनो उनके परशानी बा?'

'परशानी हमको है जी।' दाँत चबाते हुए बोला था।

'हम बचना नहीं हैं बुधना हैं माई क कोखी क अजीवन करजवार हई कउनो पाँच मिनट माँ सेन्हुर नहीं फेरें हैं कि डरा जाए।'

'आपन पैसा लो पचास हजार ...।' पचास हजार जिसको उसने हिकारत और गर्व के साथ कहा था। पाँच सौ की एक गड्डी निकाल पाकेट से उनकी तख्त की सफेद चादर पर धमक के साथ रख दिया था।

'माई मेरे साथ जाएगी... दादा, बड़का भइया के जवन मर्जी होए।'

'बहुत जल्दी मलिटरी में होने वाला हूँ बस मेडिकल बाकी है।'

'समझया... ठाकुरदीन।' ठाकुरदीन का न हर्फ बड़ी देर तक हवा में गूँजता रहा।

इतना कह कर वहाँ से चल दिया था। पहली बार किसी परजा ने ठाकुरदीन के मुँह पर उनके नाम से उनको संबोधित किया था।

ठाकुरदीन गड्डी समेट सकुचाए भी, डरे तो हैं ही। अब शायद वह बुधना की माँ पर हक न जता पाएँगे।